ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य शब्द कैसे बना है और वह क्या वस्तु है? सर्वप्रथम इस बात पर विचार करना चाहिए। हमारे आर्यधर्म के साहित्य में ब्रह्मचर्य शब्द का उल्लेख मिलता है। जिन दिनों अवशेष संसार यह भी नहीं जानता था कि वस्त्र क्या होते हैं और अन्न क्या चीज है तथा नङ्ग-धड़ंग रहकर, कच्चा माँस खाकर अपना पाशविक जीवन-यापन कर रहा था, उन दिनों भारत बहुत ऊँची सभ्यता का धनी था। उस समय भी उसकी अवस्था बहुत उन्नत थी। यहाँ के ऋषियों ने, जो संयम, योगाभ्यास, ध्यान, मौन आदि अनुष्ठानों में लगे रहते थे, संसार में ब्रह्मचर्य नाम को प्रसिद्ध किया। ब्रह्मचर्य का महत्व तभी से चला आता है–जब से धर्म की पुन: प्रवृत्ति हुई। भगवान् ऋषभदेव ने धर्म में ब्रह्मचर्य को भी अग्रस्थान प्रदान किया था। साहित्य की ओर दृष्टिपात कीजिए तो विदित होगा कि अत्यन्त प्राचीन साहित्य–आचारांग सूत्र तथा ऋग्वेद में भी ब्रह्मचर्य की व्याख्या मिलती है। इस प्रकार आर्य प्रजा को अत्यन्त प्राचीन काल से ब्रह्मचर्य का ज्ञान मिल रहा है।

१– ब्रह्मचर्य की शक्ति

आजकल ब्रह्मचर्य शब्द का सर्वसाधारण में कुछ संकुचित-सा अर्थ समझा जाता है। पर विचार करने से मालूम होता है कि वास्तव में उसका अर्थ बहुत विस्तृत है। ब्रह्मचर्य का अर्थ बहुत उदार है अतएव उसकी महिमा भी बहुत अधिक है। हम ब्रह्मचर्य का महिमागान नहीं कर सकते। जो विस्तृत अर्थ को लक्ष्य में रखकर ब्रह्मचारी बना है, उसे अखण्ड ब्रह्मचारी कहते हैं। अखण्ड ब्रह्मचारी का मिलना इस काल में अत्यन्त कठिन है। आजकल तो अखंड ब्रह्मचारी के दर्शन भी दुर्लभ हैं। अखंड ब्रह्मचारी में अद्भुत शक्ति होती है। उसके लिए क्या शक्य नहीं है? वह चाहे सो कर सकता है। अखंड ब्रह्मचारी अकेला सारे ब्रह्माण्ड को हिला सकता है। अखंड ब्रह्मचारी वह है जिसने अपनी समस्त इन्द्रियों को और मन को अपने अधीन बना लिया हो–जो इन्द्रियों और मन पर पूर्ण आधिपत्य रखता हो। इन्द्रियाँ जिसे फुसला नहीं सकतीं, मन जिसे विचलित नहीं कर सकता, ऐसा अखण्ड ब्रह्मचारी ब्रह्म का शीघ्र साक्षात्कार कर सकता है। अखंड ब्रह्मचारी की शक्ति अजबगजब की होती है।

२–ब्रह्मचर्य का व्यापक अर्थ

परमात्मा के प्रति विश्वास स्थिर क्यों नहीं रहता? यह प्रश्न अनेकों के मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। इसका उत्तर ज्ञानी यह देते हैं कि आन्तरिक निर्बलता ही परमात्मा के प्रति विश्वास को स्थायी नहीं रहने देती। परमात्मा के प्रति विश्वास न होने के जो कारण हैं, उनमें से एक कारण है ब्रह्मचर्य का अभाव। जीवन में यदि ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा हुई तो निसन्देह ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धाभाव स्थायी रह सकता है।

ज्ञानीजन कहते हैं–समस्त इन्द्रियों पर अंकुश रखना और विषयभोग में इन्द्रियों को प्रवृत्त न होने देना पूर्ण ब्रह्मचर्य है और वीर्य की रक्षा करना अपूर्ण ब्रह्मचर्य है। आज वीर्य रक्षा तक ही ब्रह्मचर्य की सीमा स्वीकार की जाती है। पर वास्तव में सब इन्द्रियाँ और मन को विषयों की ओर प्रवृत्त न होने देना पूर्ण ब्रह्मचर्य है। केवल वीर्यरक्षा अपूर्ण ब्रह्मचर्य है। अलबत्ता अपूर्ण ब्रह्मचर्य की साधना के द्वारा पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुँचा जा सकता है।

३–वीर्य का दुरुपयोग

देश में आज जो रोग, शोक, दरिद्रता आदि जहाँ-तहाँ दृष्टिगोचर होते हैं उन सबका एकमात्र कारण वीर्यनाश है। आज बेकार वस्तु की तरह वीर्य का दुरुपयोग किया जा रहा है। लोग यह नहीं जानते कि वीर्य में कितनी अधिक शक्ति विद्यमान है। इसी कारण विषय-भोग में वीर्य का नाश किया जा रहा है। उसी में आनन्द माना जा रहा है। ऐसा करने से जब अधिक सन्तान उत्पन्न होती है तो घबराहट पैदा होती है। पर उनसे मैथुन त्यागते नहीं बनता। भारतीयों को इस प्रश्न पर गहरा विचार करना चाहिये। विदेशी लोग ब्रह्मचर्य की महत्ता को भले ही न समझते हों या स्वीकार न करते हों परन्तु भारत में तो ऐसे महान् ब्रह्मचारी हो गये हैं जिन्होंने ब्रह्मचर्य द्वारा महान् शक्ति लाभ कर जगत के समक्ष यह आदर्श उपस्थित कर दिया है कि ब्रह्मचर्य के प्रशस्त पथ पर चलने में ही मानव समाज का कल्याण है। ब्रह्मचर्य ही कल्याण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का मार्ग है। यह समझते-बूझते हुए भी विषय-भोग में सुख मानना और जब संतान उत्पन्न हो तो उसका निरोध करने के लिए कृत्रिम उपाय काम में लाना घोर अन्याय है। वीर्य को वृथा बर्बाद करने के समान दूसरा कोई अन्याय नहीं है।

हमारे अन्दर जो शांति और साहस है, वह वीर्य के ही प्रताप से है। अगर शरीर में वीर्य न हो तो मनुष्य हलन-चलन गमनागमन आदि क्रियाएँ करने में भी समर्थ नहीं हो सकता।

४–ब्रह्मचर्य का महत्व

जो भाई-बहिन ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे वे संसार को अनमोल रत्न प्रदान करने में समर्थ हो सकेंगे। हनुमानजी का नाम कौन नहीं जानता? आलंकारिक भाषा में कहा जाता है कि उन्होंने लक्ष्मणजी के लिए द्रोण पर्वत उठाया था। उसी पर्वत का एक टुकड़ा गिर पड़ा, जो गोवर्धन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अलंकार का आवरण दूर कर दीजिए और विचार कीजिये तो इस कथन में हनुमानजी का प्रचण्ड शक्ति का दिग्दर्शन आप पाएँगे। हनुमानजी में इतनी शक्ति कहाँ से आई? यह महारानी अंजना और महाराज पवनजी का बारह वर्ष की अखण्ड ब्रह्मचर्य की साधना का प्रताप था। उनके ब्रह्मचर्य पालन ने संसार को एक ऐसा उपहार, ऐसा वरदान दिया, जो न केवल अपने समय में ही अद्वितीय था, वरन् आज तक भी वह अद्वितीय समझा जाता है और शक्ति की साधना के लिए उसकी पूजा भी की जाती है।

बहिनों! अगर तुम्हारी हनुमान सरीखा शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न करने की साध है तो अपने पति को कामुक बनाने वाले साज-सिंगार और हावभाव त्याग कर स्वयं ब्रह्मचर्य की साधना करो और पति को भी ब्रह्मचर्य पालन करने दो।

५–ब्रह्मचर्य ही जीवन है

अपूर्ण ब्रह्मचर्य केवल वीर्यरक्षा को कहते हैं। वीर्य वह वस्तु है जिसके सहारे सारा शरीर टीका हुआ है। यह शरीर वीर्य से बना भी है। अतएव आँखें वीर्य हैं। कान वीर्य हैं। नासिका वीर्य है। हाथ पैर वीर्य हैं। सारे शरीर का निर्माण वीर्य से हुआ है, अतएव सारी शरीर वीर्य है। जिस वीर्य से सम्पूर्ण शरीर का निर्माण होता है उसकी शक्ति क्या साधारण कही जा सकती है? किसी ने ठीक ही कहा है–

मरण बिन्दुपातेन, जीवन बिन्दुधारणात् ।

६–अपूर्ण ब्रह्मचर्य का प्रथम नियम

अपूर्ण ब्रह्मचर्य के दस नियमों में पहिला नियम भावना है। माता-पिता को ऐसी भावना लानी चाहिए कि मेरा पुत्र वीर्यवान् और जगत् का कल्याण करने वाला बने। इस प्रकार की भावना से बहुत लाभ होता है। आप लोगों को अलग-अलग तरह के स्वप्न आते होंगे। इसका कारण क्या है? कारण यही है कि सब की भावना भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। यह बात प्राय: सभी जानते है कि जैसी भावना होती है, वैसा स्वप्न आता है। इसी प्रकार संतान के विषय में माता-पिता की भावना जैसी होती है, वैसी ही सन्तान बन जाती है। जिस प्रकार भावना से स्वप्न का निर्माण होता है, इसी प्रकार भावना से संतान के विचारों और कार्यों का निर्माण होता है। नीच विचार करने से खराब स्वप्न आता है और यही बात संतान के विषय में भी समझनी चाहिये। संतान के विषय में तुम जैसी भावना लाओगे, आगे चलकर संतान वैसी ही बन जायेगी। अतएव सन्तान के लिए और अपने लिए ब्रह्मचर्य की भावना निरन्तर करनी चाहिये।

७–दूसरा नियम

ब्रह्मचर्य का दूसरा नियम भोजन-सम्बन्धी विवेक है। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि जिस खानपान में आनन्द आता है, वही भोजन अच्छा है, पर यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। ब्रह्मचारी के भोजन में और अब्रह्मचारी के भोजन में बड़ा अन्तर होता है। गीता में रजोगुणी, तमोगुणी और सतोगुणी का भोजन अलग-अलग बताया है। पर आज के लोग जिह्वा के वशवर्ती बनकर भोजन के गुलाम हो रहे हैं। यदि तुम अपनी जीभ पर भी अंकुश नहीं रख सकते तो तुम आगे किस प्रकार बढ़ सकोगे? विद्याभ्यास और शास्त्र श्रवण का फल यही है कि बुरे कामों की प्रवृत्ति न की जाय। आजकल खान-पान के सम्बन्ध में बड़ी भयंकर भूलें हो रही हैं और हालत ऐसी जान पड़ती है मानो विद्याभ्यास का फल खानपान का भान भूल जाना ही हो।

८–विनाश के कारण

वीर्यनाश का एक कारण एक ही कमरे में, एक ही बिछौने पर स्त्री पुरुष का शयन करना भी है। एक ही कमरे में और एक शय्या पर सोने से वीर्य स्थिर नहीं रह सकता। शास्त्र में जहाँ स्त्री और पुरुष के सोने का वर्णन मिलता है वहाँ ऐसा ही वर्णन मिलता है कि स्त्री और पुरुष अलग-अलग शयनागार में सोते थे। पर आज इस विषय में नियम का पालन होता नजर नहीं आता।

निष्क्रिय बैठे रहना भी वीर्यनाश का एक कारण है। जो लोग अपने शरीर और मन को किसी सत्कार्य में संलग्न नहीं रखते, उन लोगों का वीर्य भी स्थिर नहीं रह सकता। यदि शरीर और मन को निष्क्रिय न रखा जाय तो वीर्य को हानि नहीं पहुँचती।

रात्रि में देर तक जागरण करना, सूर्योदय के बाद भी सोते रहना और अश्लील साहित्य का पढ़ना, ये सब भी वीर्यनाश के कारण हैं। अश्लील चित्र देखने से और अश्लील पुस्तकें पढ़ने से भी वीर्य स्थिर नहीं रहता। आज जहाँ-तहाँ अश्लील पुस्तकें पढ़ने और अश्लील चित्र देखने का प्रचार हो गया है। आजकल लोग महापुरुषों और महासतियों के जीवन चरित्र पढ़ने के बदले अश्लीलतापूर्ण पुस्तकें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढ़ने के शौकीन हो गये हैं। उन्हें यह विचार ही नहीं आता कि ऐसा करने से जीवन में कितने विकार आ घुसे हैं। कहावत है–'जैसा वाचन वैसा विचार'। इस कहावत के अनुसार अश्लील पुस्तकों के पठन से लोगों के विचार भी अश्लील बनते जा रहे हैं।

नाटक-सिनेमा देखना भी वीर्यनाश का कारण है। आजकल नाटक-सिनेमा की धूम मची हुई है। जहाँ देखो वहाँ गरीब से लेकर अमीर तक–सबको नाटक-सिनेमा में फंसाने का प्रयत्न किया जा रहा है और इस प्रकार सिनेमा वीर्यनाश के साधन बन रहे हैं।

९–सिनेमा और ग्रामोफोन

आजकल के सिनेमा तो नैतिकता से इतने पतित और निर्लज्जतापूर्ण होते सुने जाते हैं कि कोई भला मानुष अपने बालबच्चों के साथ उन्हें देख नहीं सकता। सिनेमा के कारण आज लाखों नवयुवक आचरणहीन बन रहे हैं। इन सिनेमाओं की बदौलत भारतीय नारी अपनी महत्ता का विस्मरण कर भारतीय सभ्यता के मूल में कुठाराघात कर रही है। यह अत्यन्त खेद की बात है। इसी प्रकार ग्रामोफोन को भी आनन्द का साधन समझा जाता है पर उसके द्वारा संस्कारों में कितनी बुराइयाँ घुस रही हैं, इस ओर कितने लोगों का ध्यान जाता है?

१०–ब्रह्मचर्य साधन

ब्रह्मचर्य पालने वालों को अथवा जो ब्रह्मचर्य पालन चाहते हैं उन्हें विलासपूर्ण वस्त्रों से, आभूषणों से, आहार से सदैव बचते रहना चाहिये। मस्तिष्क में कुविचारों का अंकुर उत्पन्न करने वाले साहित्य को हाथ भी नहीं लगाना चाहिए। जो पुस्तकें धर्म, देश-भक्ति की भावना जागृत करने वाली और चरित्र को सुधारने वाली होती हैं उनमें अंग्रेज सरकार राजनीति की गंध सूंघती है और उन्हें जब्त कर लेती है। पर जो पुस्तकें ऐसा गंदा और घासलेटी साहित्य बढ़ाती हैं, प्रजा का सर्वनाश कर रही हैं, उनकी ओर से वह सर्वथा उदासीन रहती है। यह कैसी भाग्यविडम्बना है?

११–वीर्य की महिमा

स्वप्न में भी वीर्य का नाश होता है। कुछ लोग कहा करते हैं कि वीर्य रक्षा से स्वप्नदोष होता है पर यह कथन भ्रमपूर्ण है। इस भ्रामक विचार का परित्याग करके स्वप्नदोष के असली कारण का पता लगाना चाहिये। फिर उस कारण से बचकर दोषनिवारण का प्रयत्न करना चाहिये। जब तुम सो रहे हो, तब तुम्हारी जेब में से अगर कोई रत्न निकाल कर ले जाने लगे और उस समय तुम जाग उठो तो आँखों देखते क्या रत्न ले जाने दोगे? नहीं, तो फिर स्वप्नदोष के कारण जानबूझ कर वीर्य को नष्ट होने देना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है?

१२–ब्रह्मचर्य और रसनानिग्रह

ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए, साथ ही स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जिह्वा पर अंकुश रखने की आवश्यकता है। जिह्वा पर अंकुश न रखने से अनेक प्रकार की हानियाँ होती हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य अपनी जीभ पर काबू रखता है उसे प्रायः वैद्यों और डॉक्टरों के द्वार पर भटकने की आवश्यकता नहीं रहती।

अनेक लोग ऐसे हैं जिनके लिए जीवन की अपेक्षा भोजन अधिक महत्व की वस्तु है। वे जीने के लिए नहीं खाने के लिए जीते हैं। भले ही कोई सीधी तरह इस बात को स्वीकार न करे मगर उसके भोजन-व्यवहार को देखने से यह सत्य साफ तौर से प्रगट हुए बिना नहीं रहेगा। यही कारण है कि अधिकांश लोग जीवन के शुभ-अशुभ की कसौटी पर भोजन की परख नहीं करते। वे जिह्वा को कसौटी बनाकर भोजन की अच्छाई-बुराई की जाँच करते हैं। जो जीवन की दृष्टि से भोजन करता है वह स्वास्थ्य नाशक और जीवन को भ्रष्ट करने वाला भोजन कैसे कर सकता है? कुशल मनुष्य अज्ञात व्यक्ति को सहसा अपने घर में स्थान नहीं देता। तब जिस भोजन के गुण-दोष का पता न हो उसे पेट में स्थान देना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है? जो ऐसे भोजन को पेट में ठूंस लेता है, उसके पेट को भोजन-पिटारे के सिवा और क्या कहा जा सकता है?

एक विद्वान का कथन है कि दुनिया में जितने आदमी खाने-पीने से मरते हैं, उतने खाने-पीने के अभाव से नहीं मरते। लोग पहले ठूंस-ठूंस कर खाते हैं, फिर डॉक्टर की शरण लेते हैं। आज जो आदमी जितनी अधिक चीजें अपने भोजन में समाविष्ट करता है वह उतना ही बड़ा आदमी गिना जाता है, मगर शास्त्र का आदेश यह है कि जो जितना महान त्यागी है वह उतना ही महान् पुरुष है। शास्त्र में आनन्द श्रावक का वर्णन करते हुए कहा गया है कि बारह करोड़ स्वर्ण मोहरों का और चालीस हजार गायों का धनी होने पर भी उसने अपने खाने-पीने के लिए कुछ गिनती की चीजों की ही मर्यादा कर ली थी। इस प्रकार खान-पान के विषय में जो जितना संयम रखता है वह उतना ही महान् है। जिह्वासंयम से स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। नागरिकों को जितना और जैसा भोजन मिलता है, उतना और वैसा किसानों को नहीं। फिर भी अगर दोनों की कुश्ती हो तो किसान ही विजयी होगा। यह कौन नहीं जानता कि सभ्य और बड़े कहलाने वाले लोगों की अपेक्षा किसान अधिक स्वस्थ और सबल होता है। इसका एक कारण सादा और सात्विक भोजन है।

इस तरह अधिक भोजन करने से स्वास्थ्य सुधरने की जगह बिगड़ता है। विकृत भोजन करने में स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है और चरित्र को भी. इसी कारण विकृत (विगय) भोजन करने का शास्त्र में निषेध किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मचर्य का भोजन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। भोगी का भोजन और योगी का भोजन एक-सा नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य की साधना करने वालों को ऐसा और इतना ही भोजन करना चाहिये जिससे शरीर की रक्षा हो सके और जो ब्रह्मचर्य में बाधक न होकर साधक हो। अधिक गरिष्ठ, तेज, मसालेदार और परिमाण से अधिक भोजन सर्वथा हानिकारक है।

१३–ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में लोगों की भ्रान्त धारणा

विषय-भोग की कामना का नियन्त्रण नहीं हो सकता, यह कामना अजेय है, इस प्रकार की दुर्भावना पुरुष-समाज में एक बार पैठ पाई, तो भयंकर अनर्थ होंगे और उन अनर्थो की परम्परा का सामना करना सहज नहीं होगा।

यद्यपि आजकल भी अनेक लोग हैं, जिनकी यह भ्रान्त धारणा हो गई है कि मनुष्य कामभोग की वासना पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। संभवत: वे लोग मनुष्य को काम वासना का कीड़ा समझते हैं। पर प्राचीन आर्य-ऋषियों का अनुभव इस धारणा का विरोध करता है। कोई व्यक्ति विशेष ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ रहे, यह एक बात है और यह कहना कि ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना संभव नहीं है, दूसरी बात है। किसी व्यक्ति की असमर्थता के आधार पर किसी व्यापक सिद्धान्त का निर्माण कर बैठना, सच्चाई के साथ अन्याय करना है। इस प्रकार असमर्थता की ओट में विषयभोगों का विचार करना सर्वथा अनुचित है।

आज भी संसार में ऐसे व्यक्तियों का मिलना असंभव नहीं है जो बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए जन-सेवा कर रहे हैं। फिर भीष्म और भगवान् नेमिनाथ जैसे पवित्र ब्रह्मचारियों का उच्च आदर्श जिन्हें मार्ग-प्रदर्शन कर रहा हो, उन भारतवासियों के हृदय में न जाने यह भूत कैसे घुस गया है कि विषय वासना पर काबू रखना शक्य नहीं है। साधु हुए बिना ब्रह्मचर्य का पालन हो ही नहीं सकता और गृहस्थ-जीवन में ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान एकदम अशक्यानुष्ठान है! वास्तव में यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण है। मनोबल दृढ़ होने पर पूर्ण या नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है। यही नहीं वरन् विवाहित जीवन व्यतीत करते हुए गृहस्थ जीवन में भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है। ब्रह्मचर्य पालने से किसी भी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं है। यही नहीं किन्तु अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। कहा भी है :–

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभ: ।

कुछ महानुभावों ने एक नये सिद्धान्त का आविष्कार किया है। उनकी अनोखी सी समझ यह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। पर न तो आज तक यह सुना गया है कि ब्रह्मचर्य पालन से किसी को किसी रोग का शिकार होना पड़ा है और न ऐसा कोई उदाहरण ही देखा गया है। हाँ, ठीक इससे उल्टे जो लोग विषयी होते हैं, वे ही रोगों द्वारा सताये जाते हैं। यह बात तो प्रत्यक्ष दिखाई देती है। अतएव अपने हृदय से इस भ्रान्ति को निकाल फेंको कि ब्रह्मचर्य से रोग पैदा होते हैं। ब्रह्मचर्य जीवन है। उससे शक्ति का विकास होता है। जहाँ शक्ति है, वहाँ रोगों का आक्रमण नहीं होता। अशक्त और दुर्बल पुरुष ही रोगों द्वारा सताये जाते हैं।

खेद है कि लोगों के मन में यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि विषय भोग की इच्छा का दमन करना अशक्य है। परन्तु जैसे नेपोलियन ने असम्भव शब्द कोश में से निकाल डालने को कहा था उसी प्रकार तुम अपने हृदय में से निकाल बाहर करो। ऐसा करने से तुम्हारा मनोबल सुदृढ़ बनेगा और तब विषय-भोग की कामना पर विजय प्राप्त करना तनिक भी कठिन न होगा।

त्रिविध ब्रह्मचर्य

१–ब्रह्मचर्य शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त

'ब्रह्मचर्य' एक ही शब्द नहीं है, किन्तु 'ब्रह्म' शब्द में 'चर्य' कृत प्रत्ययान् से बना हुआ संस्कृत शब्द है। ब्रह्म+चर्य=ब्रह्मचर्य। 'ब्रह्म' शब्द के वैसे तो कई अर्थ होते हैं, परन्तु यहाँ यह शब्द वीर्य, विद्या और आत्मा के अर्थ में है। 'चर्य' का अर्थ, रक्षण, अध्ययन तथा चिन्तन है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ वीर्यरक्षा, विद्याध्ययन और आत्म-चिन्तन है। 'ब्रह्म' का अर्थ उत्तम काम या कुशलानुष्ठान भी होता है, इसलिये ब्रह्मचर्य का अर्थ उत्तम या कुशलानुष्ठान का आचरण भी है। ब्रह्मचर्य शब्द के इन अर्थों पर दृष्टिपात करने से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि जिस आचरण द्वारा आतम-चिन्तन हो, आत्मा अपने आपको पहचान सके और अपने लिए वास्तविक सुख प्राप्त कर सके, उस आचरण का नाम 'ब्रह्मचर्य' है। इस अर्थ में ब्रह्मचर्य शब्द के ऊपर कहे हुए सभी अर्थ आ जाते हैं।

२–ब्रह्मचर्य की परिभाषा

आत्मचिन्तन के लिए, इन्द्रियों और मन पर विजय पाना आवश्यक है। प्राकृतिक नियमों के अनुसार इन्द्रियाँ मन के, मन बुद्धि के और बुद्धि आत्मा के अधीन एवं आत्मा की सहायिका होनी चाहिये। ऐसा होने पर ही आत्मा अपने आपको जान सकता है, इन्द्रियाँ मन और बुद्धि का कर्तव्य, आत्मा को बलवान् तथा पुष्ट बनाना है। बलवान् आत्मा ही अपना स्वरूप जान सकता है, विद्याध्ययन में समर्थ हो सकता है और उत्तम काम तथा कुशलानुष्ठान कर सकता है। इसलिये इन्द्रियों, मन और बुद्धि का काम आत्मा को बलवान् बनाना, आत्मा के हित को दृष्टि में रखना, आत्मा का अहित करने वाले कामों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से दूर रहना है। इन्द्रियों और मन का अपने इस कर्तव्य पर स्थिर रहने का नाम ही 'ब्रह्मचर्य' है।

आत्मा का हित अपना स्वरूप जानने में है। आत्मा अपना स्वरूप तभी जान सकता है–जब उसके सहायक एवं सेवक इन्द्रियाँ तथा मन, उसके आज्ञावर्ती और शुभचिन्तक हों। विपरीतावस्था में आत्मा का अहित स्वाभाविक ही है। आत्मा के सहायक तथा सेवक वे ही इन्द्रियाँ और मन हैं, जो सुख की अभिलाषा से दुर्विषयों की ओर न दौड़ें। इन्द्रियों का सुख की अभिलाषा से दुर्विषयों की ओर दौड़ना तथा मन का इन्द्रियानुगामी होना आत्मा के लिए अहितकारक है। आत्मा का हित तभी है, जब न तो इन्द्रियाँ दुर्विषयों की ओर दौड़े और न इन्द्रियों के साथ ही साथ मन भी आत्मा का अशुभ-चिन्तक बने। इन्द्रियाँ और मन का दुर्विषयों की ओर न दौड़ना, दुर्विषयों की चाह न करना और सुख की लालसा से उन्हें न भोगना ही 'ब्रह्मचर्य' है।

इन्द्रियाँ पाँच है–कान, आँख, नाक, जीभ और त्वचा। इन पाँचों इन्द्रियों के पाँच विषय हैं–शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श अर्थात् सुनना, देखना, सूंघना, स्वाद लेना और छूना। यद्यपि ये इन्द्रियाँ हैं सुनने, देखने, सूँघने, स्वाद लेने और स्पर्श करने के लिए ही–इसी कारण इनका नाम ज्ञानेन्द्रियाँ भी है– लेकिन ये ज्ञानेन्द्रियाँ तभी होती हैं और तभी आत्मा का हित भी कर सकती हैं, जब दुर्विषयों में लिप्त न हों, उनके भोग में सुख न मानें और अपने आप को दुर्विषय-भोग के लिए न समझें। इसी प्रकार मन भी आत्मा का हित करने वाला तभी है, जब वह अपने पद से भ्रष्ट होकर, इन्द्रियों का अनुगामी न बन जावे और न इन्द्रियों को ही दुर्विषयों की ओर जाने दे। मन का काम इन्द्रियों को सुख देना नहीं, किन्तु आत्मा को सुख देना है और इन्द्रियों को भी उन्हीं कामों में लगाना है, जिनसे आत्मा सुखी हो। इन्द्रियों और मन का, इस कर्तव्य को समझ कर इस पर स्थिर रहना ही 'ब्रह्मचर्य' है।

३–गाँधीजी कृत ब्रह्मचर्य की परिभाषा

गाँधीजी ने 'ब्रह्मचर्य' के अर्थ में लिखा है– ''ब्रह्मचर्य का अर्थ है सभी इन्द्रियाँ और सम्पूर्ण विकारों पर पूर्ण अधिकार कर लेना। सभी इन्द्रियों को तन, मन और वचन से, सब समय और सब क्षेत्रों में संयमित करने को 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं।''

४–ब्रह्मचर्य की व्यावहारिक परिभाषा

यद्यपि सब इन्द्रियाँ और मन का दुर्विषयों की ओर न दौड़ने का नाम ब्रह्मचर्य है, लेकिन व्यवहार में, ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल 'वीर्यरक्षा' ही लिया जाता है। इस व्यावहारिक अर्थ–अर्थात् पूर्ण रुपेण वीर्यरक्षा– से भी इन्द्रियों और मन का दुर्विषयों की ओर दौड़ना ही मतलब निकलेगा। पूर्णतया वीर्यरक्षा तभी हो सकती है, जब सभी इन्द्रियाँ और मन दुर्विषयों की ओर न दौड़ें। यदि एक भी इन्द्रिय दुर्विषय की ओर दौड़ती है–उसे चाहती है और उसमें सुख भी मानती है–तो सम्पूर्णतया वीर्यरक्षा कदापि नहीं हो सकती। इसलिये पूर्ण रीति से वीर्यरक्षा का अर्थ भी वही है, जो ऊपर कहा गया है अर्थात् सर्वप्रकार के असंयम-परित्याग-रूप इन्द्रियों और मन का संयम।

५–ब्रह्मचर्य के तीन भेद और उनका सम्बन्ध

ब्रह्मचर्य मन, वचन और शरीर से होता है, इसलिये ब्रह्मचर्य के तीन भेद होते हैं अर्थात् मानसिक-ब्रह्मचर्य, वाचिक-ब्रह्मचर्य और शारीरिक-ब्रह्मचर्य। मन, वचन और काय इन तीनों द्वारा पालन किया गया ब्रह्मचर्य ही पूर्ण ब्रह्मचर्य है अर्थात् न मन में ही अब्रह्मचर्य की भावना हो, न वचन द्वारा ही अब्रह्मचर्य प्रगट हो और न शरीर द्वारा ही अब्रह्मचर्य की क्रिया की गई हो इसका नाम पूर्ण ब्रह्मचर्य है। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा है–

कायेन मनसा वाचा, सर्वविस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागो, ब्रह्मचर्य प्रचक्षते ।।

शरीर, मन और वचन से, सभी अवस्थाओं में सर्वदा और सर्वत्र मैथुन-त्याग को ब्रह्मचर्य कहा है।

कायिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव में, शरीर द्वारा अब्रह्मचर्य की कोई क्रिया न की गई हो अर्थात् शरीर से अब्रह्मचर्य में प्रवृत्ति न हुई हो। मानसिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं जिसके सद्भाव में दुर्विषयों का चिन्तन न किया जावे, अर्थात् मन में अब्रह्मचर्य की भावना भी न हो। वाचिक-ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं जिसके सद्भाव में अब्रह्मचर्य के सद्भाव को पूर्ण ब्रह्मचर्य कहते हैं।

काबिक, मानसिक और वाचिक ब्रह्मचर्य का परस्पर कर्ता क्रिया और कर्म का सा सम्बन्ध है। पूर्ण ब्रह्मचर्य वहीं हो सकता है जहाँ उक्त प्रकार के तीनों ब्रह्मचर्य का सद्भाव हो। एक के अभाव में दूसरे और तीसरे का–एकदम से नहीं तो शनैः शनैः अभाव स्वाभाविक है।

सारांश यह कि इन्द्रियों का दुर्विषयों से निवृत्त होने, मन का दुर्विषयों की भावना न करने, दुर्विषयों से उदासीन रहने, मैथुनाङ्गों सहित सब प्रकार के मैथुन त्यागने और मानसिक शक्ति को आत्मचिन्तन, आत्महित-साधन तथा आत्मविद्याध्ययन में लगा देने का ही नाम 'ब्रह्मचर्य' है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाभ और माहात्म्य

तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं ।

– सूत्रकृतांग सूत्र

''ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है''।

ब्रह्मचर्य से क्या लाभ होता है और ब्रह्मचर्य का कैसा महात्म्य है, यह संक्षेप में नीचे बताया जाता है।

१–शरीर और धर्म का सम्बन्ध

आत्मा का ध्येय, संसार के जन्म-मरण से छूट कर, मोक्ष प्राप्त करना है। आत्मा इस ध्येय को तभी प्राप्त कर सकता है, जब उसे शरीर की सहायता हो–अर्थात् शरीर स्वस्थ हो। बिना शरीर के धर्म नहीं हो सकता और बिना धर्म के आत्मा अपने उक्त ध्येय तक नहीं पहुँच सकता। काव्य ग्रंथों में कहा है–

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।

– कुमारसम्भव

'शरीर ही सब धर्मों का प्रथम और उत्तम साधन है'।

धर्मार्थिकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का आरोग्य ही मूल साधन है।

२–ब्रह्मचर्य से शारीरिक स्वस्थता

आत्मा को अपने ध्येय तक पहुँचने के लिए शरीर की आवश्यकता है और वह भी आरोग्यता के साथ। अस्वस्थ शरीर, धर्म-साधन में असमर्थ रहता है। ब्रह्मचर्य से इस अंग की पूर्ति होती है, अर्थात् शरीर स्वस्थ रहता है, कोई रोग पास भी नहीं फटकने पाता।

वैद्यक ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य से शारीरिक लाभ बताने के लिए कहा है–

मृत्युव्याधिजरानाशि, पीयूषपरमौषधम् ।
ब्रह्मचर्य महायत्नः, सत्यमेव वदाम्यहम् ।।

'मैं सत्य कहता हूँ कि मृत्यु, व्याधि और बुढ़ापे का नाश करने वाली अमृत के समान औषध ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य, मृत्यु रोग और बुढ़ापे का नाश करने वाला महान् यज्ञ है।'

३–ब्रह्मचर्य से धर्म-रक्षा

तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ रहता है, जिससे धर्म का पालन होता है। इतना ही नहीं किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करना भी धर्म ही है। यह धर्म का प्रधान अंग एवं धर्म का प्रधान रक्षक है। इसके लिए प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा है–

पउमसरतलागपालिभूयं, महासगढअरगतुंबभूयं, महानगरपागारक वाडफलिहभूयं, रज्जु-पिणद्धो व्वइंदकेऊ, विसुद्धगेणगुण संपिणद्धं, जम्मि य भग्गम्मि होइ सहसा सव्वं संभग्गमहियचुणियकुसल्लियपलट्टपडि-यखंडियपरिसडियविणासियं विणयसीलतवनियमगुण–समूहं ।

'ब्रह्मचर्य, धर्म रूप पद्मसरोवर का पाल के समान रक्षक है। यह दया, क्षमा आदि गुणों का आधार-भूत एवं धर्म की शाखाओं का आधार-स्तम्भ है। ब्रह्मचर्य चर्म रूप महानगर का कोट है और धर्म रूप महानगर का प्रधान रक्षक-द्वार है। ब्रह्मचर्य के खण्डित होने पर सभी प्रकार के धर्म, पहाड़ से गिरे हुए कच्चे घड़े के समान चूर-चूर हो जाते हैं।'

ब्रह्मचर्य, धर्म का कैसा आवश्यक अंग है, यह बताते हुए और ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते हुए एक मुनि ने कहा है–

पंच महव्वए-सुव्वयमूलं, समणामणाइल साहुसुंविण्णं ।
वेरविरामण पज्जवसाणं, सव्वसमुद्द महोदहितित्थ ।।१ ।।
तित्थकरेहिं सुदेसिय मग्गं, नरगतिरिच्छविवज्जियमग्गं ।
सव्वपवित्तसुनिम्मियसारं, सिद्धिविमाण-अवंगुयदारं ।।२ ।।
देवनरिंदनमंसियपूइयं सव्वजगुत्तममंगलमग्गं ।
दुद्धरिसं गुणनायकमेक्कं मोक्खपहरसवडिंसगभूयं ।।३ ।।

'ब्रह्मचर्य, पाँच महाव्रत का मूल है अतः उत्तम व्रत है अथवा पंच महाव्रत वाले साधुओं के उत्तम व्रतों का ब्रह्मचर्य मूल है। ऐसे ही श्रावकों के सुव्रतों का भी ब्रह्मचर्य मूल है। ब्रह्मचर्य, दोष रहित है, साधुजनों द्वारा भलीभाँति पालन किया गया है, वैरानुबन्ध का अन्त करने वाला है और स्वयंभूरमण महोदधि के समान दुस्तर संसार से तरने का उपाय है।'

ब्रह्मचर्य तीर्थंकरों द्वारा सदुपदेशित है, उन्हीं के द्वारा इसके पालन का मार्ग बताया गया है और इसके उपदेश द्वारा नरक गति तथा तिर्यक्-गति का मार्ग रोक कर सिद्ध-गति तथा विमानों के द्वार खोलने का पवित्र मार्ग बताया गया है।

यह ब्रह्मचर्य देवेन्द्र और नरेन्द्रों से पूजित लोगों के लिए भी पूजनीय हैं, समस्त लोकों में सर्वोत्तम मंगल का मार्ग है। सब गुणों का अद्वितीय तथा सर्वश्रेष्ठ नायक है और मोक्ष-मार्ग का भूषण रूप है।

४–ब्रह्मचर्य ही तप है

मोक्ष के प्रधान साधन–तप में भी ब्रह्मचर्य को पहला स्थान है। जैन-शास्त्रों में ब्रह्मचर्य सब से उत्तम तप माना गया है। इसका एक प्रमाण इस प्रकरण के प्रारम्भ में दिया जा चुका है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में भी कहा है–

जम्बू! एत्तो य बंभचेरं तव-नियम-नाण दंसण-चरित्तसम्मत्तविणयमूलं, यम-नियम-गुणमप्पहाणाजुत्तं, हिमवन्तमहंत तेयमंतं पसत्थगंभीरथिमियमज्झं ।

हे जम्बू! यह ब्रह्मचर्य, उत्तम तप नियम, ज्ञान, दर्शन, चरित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है। जिस प्रकार सब पर्वतों में हिमालय महान् और तेजस्वी है, उसी प्रकार सब तपस्याओं में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है।

अन्य ग्रन्थों में भी ब्रह्मचर्य को उत्तम तप माना गया है। वेद भी ब्रह्मचर्य को ही तप मानते हैं। जैसे–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपो वै ब्रह्मचर्यम् ।
ब्रह्मचर्य ही तप है ।

गीता में भी ब्रह्मचर्य को तप माना है। उसमें कहा है–

ब्रह्मचर्यमहिंसा च, शारीरं तप उच्यते ।

अर्थात् ब्रह्मचर्य और अहिंसा शरीर का उत्तम तप है।

इसी प्रकार अन्य ग्रन्थकारों ने भी ब्रह्मचर्य को उत्तम तप माना है।

५–ब्रह्मचर्य से पारलौकिक लाभ

पारलौकिक लाभ का ब्रह्मचर्य एक प्रधान साधन है। ब्रह्मचर्य से आत्मा परलोक सम्बन्धी सभी सुखों को प्राप्त कर सकता है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा गया है–

अज्जव साहुजणाचरियं मोक्खमग्गं विसुद्ध सिद्धि गइनिलयं सासयवव्वावाह मपुणाब्भवं पसत्थं सोमं सुभं सिवममक्खयकरं । जइवरसारक्खियं सुचरियं सुभासियं नवरिमुणिवरे हिं महापुरिसधीरसूरधम्मियधिइमंताणा य सया विसुद्धं भव्वं भव्वजणाणुचिण्णां निस्संकियं निब्भयं नित्तुसं निरायासं ।

'ब्रह्मचर्य' अन्त:करण को पवित्र एवं स्थिर रखने वाला है, साधुजनों से सेवित है, मोक्ष का मार्ग है और सिद्धगति का गृह है, शाश्वत है, बाधा-रहित है, पुनर्जन्म को नष्ट करने के कारण अपुनर्भव है, प्रशस्त है, रागादि का अभाव करने से सौम्य है, सुख-स्वरूप होने से शिव है, दु:ख सुखादि द्वन्द्वों से रहित होने से अचल है, अक्षय तथा अक्षत है, मुनियों द्वारा सुरक्षित एवं प्रचारित है, भव्य है, भव्यजनों द्वारा आचरित है, शङ्का-रहित है, निर्भयता का देने वाला, विशुद्ध तथा झंझटों से दूर रखने वाला एवं खेद और अभिमान को नष्ट करने वाला है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र में आगे कहा है–

जम्मि य आराहियम्मि आराहियं वयमिणं सव्वं । सीलं तवो य विणओ य संजमोय य खंती गुत्ती मुत्ति तहेव इहलोइय पारलोइय जसेय कित्ती य पच्चओ य ।

'ब्रह्मचर्य की आराधना से सभी व्रत आराधित होते हैं। तप, शील, विनय, संयम, क्षमा, गुप्ति और मुक्ति सिद्ध होती है तथा इस लोक और परलोक में यश-कीर्ति की विजय-पताका फहराती है।'

अन्य ग्रन्थकार भी ब्रह्मचर्य से परलोक सम्बन्धी लाभ बताते हुए कहते हैं–

समुद्रतरणे यद्वत् उपायो नौ: प्रकीर्तित ।
संसारतरणे यद्वत् ब्रह्मचर्य्य प्रकीर्तितम् ।।

–स्मृति ।

समुद्र से पार जाने के लिए, जिस प्रकार नौका श्रेष्ठ-साधन है, उसी प्रकार संसार से तरने के लिए ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट साधन है।

ग्रन्थकारों ने यज्ञ भी ब्रह्मचर्य को ही माना है। जैसे–

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव ।

(छान्दोग्योपदनिशद्)

'जिसे यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है।'

संसार-बन्धन से छूटकर, मोक्ष-प्राप्ति के लिए चारित्र धर्म बताते हुए भगवान् ने जिन पाँच महाव्रतों का उपदेश दिया है उनमें ब्रह्मचर्य चौथा महाव्रत है। ब्रह्मचर्य के बिना, चारित्र-धर्म का पूर्णरूपेण पालन नहीं हो सकता। आत्मा को संसार-बन्धन से छुड़ा कर, मोक्ष दिलाने वाले चारित्र-धर्म का ब्रह्मचर्य एक प्रधान और आवश्यक अंग है। ब्रह्मचर्य के बिना न तो अब तक कोई मुक्त हुआ ही है, न हो ही सकता है। सिद्धात्माओं को सिद्ध गति प्राप्त कराने वाला यह ब्रह्मचर्य ही है। इस प्रकार पारलौकिक लाभ का ब्रह्मचर्य एक प्रधान साधन है।

६–ब्रह्मचर्य से इहलौकिक लाभ

ब्रह्मचर्य से पारलौकिक ही नहीं, इहलौकिक लाभ भी है। ऊपर बताया जा चुका है कि ब्रह्मचर्य से स्वास्थ्य अच्छा रहता है। स्वास्थ्य अच्छा रहने से ही इह-लौकिक कार्य सुचारु-रूप से सम्पादन हो सकते हैं।

सांसारिक-जीवन में, शरीर स्वस्थ, सुन्दर, बलवान् एवं चिरायु रहने की, विद्या की, धन की, कर्त्तव्य-दृढ़ता की और यशादि की अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि ने ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते हुए कहा है–

चिरायुष: सुसंस्थानां दृढसंहनना नरा: ।
तेजस्विनो महावीर्या भवेयुर्ब्रह्मचर्यत: ।।

ब्रह्मचर्य से शरीर चिरायु, सुन्दर, दृढ़-कर्त्तव्य तेजपूर्ण और पराक्रमी होता है।

वैद्यक ग्रन्थों में भी कहा गया है–

ब्रह्मचर्य परं ज्ञानं ब्रह्मचर्य परं बलं ।
ब्रह्मचर्यमयो ह्यात्मा ब्रह्मचर्येव तिहति ।।

'ब्रह्मचर्य ही सब से उत्तम ज्ञान है, अपरिमित बल है, यह आत्मा निश्चय रूप से ब्रह्मचर्यमय है और ब्रह्मचर्य से ही शरीर में ठहरा हुआ है।'

इन प्रमाणों से यह बात भलीभाँति सिद्ध हो जाती है कि ब्रह्मचर्य से शरीर सुन्दर भी रहता है, बलवान् भी रहता है, दीर्घजीवी भी होता है और यश-कीर्ति भी प्राप्त होती है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य, इहलौकिक सुखों का भी साधन है। लौकिक वैभव, विद्या, धन आदि तभी प्राप्त होते हैं, जब शरीर स्वस्थ हो और उसमें बल तथा साहस हो। ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ रहता है और शरीर में बल तथा साहस भी रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्वानों का मत है कि ब्रह्मचर्य के बिना विद्या प्राप्त नहीं होती। विद्या-प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य का होना आवश्यक है। अथर्ववेद में कहा है–

ब्रह्मचर्येण विद्या ।

'ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त होती है।'

विदुर नीति में कहा है–

विद्यार्थ ब्रह्मचारी स्यात् !

'यदि विद्या के इच्छुक हो तो ब्रह्मचारी बनो।'

तात्पर्य यह कि ब्रह्मचर्य, लौकिक और लोकोत्तर, दोनों ही सुखों का प्रधान साधन है। इसकी पूर्ण-रूपेण प्रशंसा करना तो समुद्र को हाथों के सहारे तैरने का साहस करना है।

७–ब्रह्मचर्य पर अपवाद

कुछ लोगों का कथन है कि पूर्ण ब्रह्मचारी को मोक्ष या स्वर्ग प्राप्त नहीं होता क्योंकि पूर्ण ब्रह्मचारी निःसंतान रहते हैं और–

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ।

'पुत्रहीन की गति नहीं होती और स्वर्ग तो कभी भी नहीं मिलता है।'

इस श्लोक से पूर्ण ब्रह्मचारी को स्वर्ग-मोक्ष प्राप्ति से वंचित बताया जाता है, लेकिन इस श्लोक को खण्डन करने वाला दूसरा यह प्रमाण भी है–

स्वर्गे गच्छन्ति ते सर्वे ये केचिद् ब्रह्मचारिणः ।

'जितने भी ब्रह्मचारी हैं, वे सब स्वर्ग को जाते हैं' और भी कहा है कि–

अनेकानि सहस्त्राणि, कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिवं गतानि राजेन्द्र, अकृत्वा कुलसन्ततिम् ।।

हे राजन्! हजारों मनुष्य ऐसे हुए हैं जो आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रह कर कुल-सन्तति को न बढ़ाते हुए भी दिव्य गति को प्राप्त हुए हैं।

जैन-शास्त्रानुसार स्वर्ग-प्राप्ति कोई बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात तो मोक्ष प्राप्त करना है। ब्रह्मचर्य से संसार की सभी ऋद्धि मिल जाय, स्वर्ग का राज्य भी प्राप्त हो जाय, तब भी यदि इसके द्वारा मोक्ष प्राप्त न हो सकता होता तो जैन-शास्त्र इसे धर्म का अंग न मानते, क्योंकि जैनशास्त्र उसी वस्तु को उपयोगी और महत्व की मानते हैं, जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त हो। लेकिन उक्त प्रमाण जिन ग्रन्थों के हैं, वे ग्रन्थ स्वर्ग को ही अन्तिम ध्येय मानते हैं। फिर भी ऊपर दिये हुए श्लोकों में से पहला श्लोक दूसरे श्लोक से अप्रामाणिक ठहरता है।

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org